भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो ।
भव भवमें मैं समवशरणमें, देखो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव भवमें, सम्यक गुण नहिं पायो ।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥ ४ ॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो ।
एक बारहू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुख कांई ।
देहविनासी मैं निजभासी, जोतिस्वरूप सदाई ॥ ५ ॥
विषय कषायनके वश होकर, देह आपनो जानो ।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछानो ॥
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यकदर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदेमें नहिं लायो ॥ ६ ॥
अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरणसमय यह मांगों ।
रोगजनित पीडा मत होऊ, अरु कषाय मत जागों ॥
ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे ॥ ७ ॥
यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
अति दुर्गंध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै ।
देहविनासी यह अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै ॥ ८ ॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्या छीजे॥
मृत्यु होनेसे हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समतासे जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो॥ ९॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके मांही।
जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाही॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभावको त्याग सयाने, समताभाव धरीजै॥ १०॥
जो तुम पूरव पुण्य किये है, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र विन कौन दिखावे, स्वर्गसंपदा भाई॥
राग द्वेषको छोड सयाने, सात व्यसन दुःखदाई।
अन्त समयमें समता धारो, परभव पंथ सहाई॥ ११॥
कर्म महा दुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावे।
तन पिंजरेमें बंध कियो मोहि, यासों कौन छुडावे॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढे।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजरेसे काढे॥ १२॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये।
गंधसुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी॥ १३॥

मृत्युरायको शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्युसमयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई॥ १२॥
यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करौ तौ, पावो संपति तेती॥ १५॥
चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकतिमें जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥ १६॥
इस तनमें क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरन हो है॥
तेज कांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पांचो इंद्री शिथल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोडे, समता उर नहिं लावै॥ १७॥
मृत्युराज उपकारी जियको, तनसे तोहि छुडावै।
नातर या तन बंदीगृहमें, पर्यो पर्यो बिललावै॥
पुद्गलके परमाणू मिलके, पिंडरूप तन भासी।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी॥ १८॥

रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गललारे।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तनसे इस क्षेत्र संबंधी, कारण आन बनो है।
खान पान दे याको पोषो, अब समभाव ठनो है॥ १९॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जानो।
इंद्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो॥
तन विनशनतै नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदिको अपनो जानो, भूल अनादी छाई॥ २०॥
अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूं ज्योतिस्वरूपि।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी॥
इष्टनिष्ट जेते सुखदुख हैं, सो सब पुद्गलसागे।
मैं जब अपनो रूप बिचारो, तब वे सब दु:ख भागे॥ २१॥
बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिनमैं ये दु ख पायो।
शस्त्रघाततै नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार नन्त ही अग्निमाहिं जर, मूओ सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहि नन्त बार मुझ, नाना दु:ख दिखायो॥२२॥
विन समाधि ये दु:ख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
यातै जबलग मृत्यु न आवै, तबलग जप तप कीजे।
जप तप बिन इस जगके माही, कोई भी ना सीजे॥ २३॥

स्वर्ग संपदा तपसे पावै, तपसे कर्म नसावै।
तपहीसे शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै॥
अब मै जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई॥ २४॥
मृत्यु समयमें मोह करै ये, तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै, यौं लख मोह तजो है॥
और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीति न कीजे।
परभवमें ये संग न चालै, नाहक आरत कीजे॥ २५॥
जे जे वस्तु लसत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो।
परगतिमें ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो॥
जो परभवमें संग चलै तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे॥ २६॥
दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो।
षोडशकारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो॥ २७॥
अन्तसमयमें ये शुभ भाव हि, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावै, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उसमें समता लाके।
जासेती गति चार दूर कर, वसो मोक्षपुर जाके॥ २८॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही ताकों सुखकी दाता, और हितू कोऊ नाई॥
आगे बहु मुनिराज भये है, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी॥२९॥
तिनमें बहु इक नाम कहूँ मै, सो सुन जिय चित लाके।
भावसहित अनुमोदे तासें, दुर्गति होय न जाके॥
अरु समता जिन उरमें आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावै॥३०॥
धन्य धन्य सुकुंमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत, पॉव भखो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥३१॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारो।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥३२॥
देखो गज मुनिके फिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीस जले जिम लकडी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव वारी॥३३॥

सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्तो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिये कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥२४॥
श्रेणिकसुत गंगामें डूबो, तब जिननाम चितारो।
धर सलेखना परिग्रह छॉडो, शुद्ध भाव उर धारो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥२५॥
समॅतभद्र मुनिवरके तनमें, क्षुधा वेदना आई।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निजगुण भाई॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमारे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥२६॥
ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो।
नद्दीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥ २७॥
धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढो।
एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥२८॥

श्रीदतमुनिको पूर्व जन्मको, वैरी देव सु आके ।
विक्रिय कर दुःख शीततनो सो, सहो साध मन लाके ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३९ ॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई ।
सूर्य्य घाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४० ॥
अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा वेदना पाई ।
वैरी चँडने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४१ ॥
विद्युत्चरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी ।
शुभ भावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बडभागी ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४२ ॥
पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरीने तन घातो ।
मोटे मोटे कीट पडे तन, तापर निज गुण रातो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥४३॥

दण्डक नमा मुनिको देही, बाणन कर अरि भेदी ।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥४४॥
अभिनंदन मुनि आदि पाँचसे, घानी पेलि जु मारे ।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है! मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ४५ ॥
चाणक मुनि गौघरके माहीं, मूंद अगिनि परजालो ।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ! मृत्यु महोत्सव वारी ॥४६॥
सात शतक मुनिवरने पायो, हथनापुरमें जानो ।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥४७॥
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये ।
पाँचो पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥४८॥

और अनेक भये इस जग में, समता रसके स्वादी ।
वे ही हमको हो सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी ॥
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों ।
ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हैं सदा उर धारों ॥ ४९ ॥
यों समाधि उर मांही लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मदको, जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतरके काजै ॥
सो भी शुकन विचारे नीके, शुभ शुभ कारण साजै ॥ ५० ॥
मात पितादिक सर्व कुटुम सो, नीके शुकुन बनावै ।
हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावै ॥
एक ग्रामके कारण एते, करै शुभाशुभ सारे ।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचें प्यारे ॥ ५१ ॥
सर्व कुटम जब रोवन लागै, तोहे रुलावे सारे ।
ये अपशुकुन करें सुन तोकों, तूं यों क्यों न विचारे ॥
अब परगतिको चालत विरियाँ, धर्मध्यान उर आनो ।
चारों आराधन आराधो, मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥
ह्वै निशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो ।
जब परगतिको करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ।
मोह जालको काट पियारे, अपनो रूप विचारो ॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ५३ ॥

दोहा ।

मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान ।
सरधा धर नित सुख लहो, सुरचन्द्र शिवथान ॥ ५४ ॥
पञ्च उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यौ पाठ मन लाय ॥ ५५ ॥

समाधिमरणभाषा ।

जोगीरासा वा नरेन्द्रछन्द ।

गौतम स्वामी वन्दों नामी, मरणसमाधि भला है । मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ, गाऊँ वचन कला है ॥ देव धरम गुरु प्रिति महा दृढ, सात व्यसन नहिं जाने । तजि बाईस अभक्ष संयमी, बारह व्रत नित ठाने ॥ १ ॥ चक्की उखरी चूलि बुहारी, पानी त्रस न विराधै । वनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं, छहौं करम इमि साधै ॥ पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा, संयम तप चउदानी । पर उपकारी अल्प अहारी, सामायिकविधि ज्ञानी ॥ २ ॥ जाप जपै तिहुं योग धरै दृढ, तनकी ममता टारै । अंतसमय वैराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारै ॥ आग लगै अरु नाव डुबै जब, धर्म विघन जब आवै ॥ चार प्रकार आहार त्यागिके, मंत्र सु मनमें ध्यावै ॥३॥ रोग असाध्य जहाँ बहु देखै, कारण और निहारै । बात बड़ी है जो बनि आवै, भार भवनको डारै ॥ जो न बनै तो घरमें रह करि, सबसों

होय निराला। मात पिता सुत तियकों सौंपे, निज परिग्रह अहि काला ॥४॥ कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन; कछु दुखिया धन देई। क्षमा क्षमा सबहीसों कहिके, मनकी शल्य हनेई॥ शत्रुनसों मिलि निज कर जोरै, मैं बहु करी है बुराई। तुमसे प्रीतमको दुख दीने, ते सब बकसो भाई॥ ५ ॥ धन धरती जो मुखसों मांगै, सो सबही संतोषै। छहौं कायके प्राणी ऊपर, करुणाभाव विशेषै॥ ऊँच नीच घर बैठ जगह इक, कछु भोजन कछु पैले। दूधाहारी क्रम क्रम तजिकै, छांछ अहार पहेले॥ ६ ॥ छाछ त्यागिकै पानी राखै, पानी तजि सँथारा। भूमिमाहिं थिर आसन मॉड़ै, साधर्मी ढिग प्यारा॥ जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवानी पढ़िये। यों कहि मौन लियौ संन्यासी, पंच परम पद गहिये ॥ ७ ॥ चौ आराधन मनमें ध्यावै, बारह भावन भावै। दशलक्षण मन धर्म विचारै, रत्नत्रय मन ल्यावै॥ पैंतीस सोलह षट पन चौ दुइ, एक बरन विचारै। काया तेरी दुखकी ढेरी, ज्ञानमई तू सारै ॥ ८ ॥ अजर अमर निज गुणसों पूरे, परमानन्द सुभावै। आनँद कन्द चिदानँद साहब, तीन जगतपति ध्यावै॥ क्षुधा तृषादिक होइ परीषह, सहै भाव सम राखै। अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै ॥ ९ ॥ हाड मास सब सूखी जाय जब, धरम लीन तन त्यागै। अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमैं, सेज उठै ज्यों जागै॥ तहँतै आवै शिव पद पावै, विलसै सुक्ख अनन्तो। 'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैन धरम जयवन्तो ॥ १० ॥

मृत्युमहोत्सव ।

स्वर्गीय पं० सदासुखजीकृत वचनिका सहित

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे ।
समाधिबोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥ १ ॥

अर्थ—मृत्युके मार्गमें प्रवर्त्यों जो मैं ताकूं भगवान वीतराग जो है सो समाधि कहिये स्वरूपकी सावधानी अर बोध कहिये परलोकके मार्गमें उपकारक वस्तु सो देहु जितनैक मैं मुक्तिपुरी प्रति जाय पहुंचूं या प्रार्थना करूं हूं। **भावार्थ**—मैं अनादिकालतैं अनंत कुमरण किये जिनकूं सर्वज्ञ वीतराग ही जानै हैं। एकबार हू सम्यक्मरण नहिं किया। जो सम्यक्मरण करता तो फिर संसारमें मरणका पात्र नहिं होता। जातै जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्र स्वभाव है सो विषय कषायनिकरि नहीं घात्या जाय सो सम्यक्मरण है अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुवा देहका नाशकूं ही अपना आत्माका नाश जानना। संक्लेशतैं मरण करना सो कुमरण है सो मैं मिथ्यादर्शनका प्रभाव करि देहकूं ही आपा मानि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपका घात करि अनंत परिवर्तन किये सो अब भगवान् वीतरागसों ऐसी प्रार्थना करूं हूं जो मेरे मरणके समयमें

वेदनामरण तथा आत्मज्ञानरहित मरण मत होहू क्योंकि सर्वज्ञ वीत-रागका शरणसहित संक्लेशरहित धर्मध्यानतें मरण चाहता वीत-रागहीका शरण ग्रहण करूं हूं ॥ १ ॥

अब मैं अपने आत्माकूं समझाऊं हूं,—

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपञ्जरे ।
भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥२॥

अर्थ—भो आत्मन् ! कृमिनिके सैकडा जालनिकरि भऱ्या अर नित्य जर्जरा होता यो देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होते तुम भय मत करो जातें तुम तो ज्ञानशरीर हो । **भावार्थ**—तुमारा रूप तो ज्ञान है-जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहे हैं अर अमूर्तिक ज्ञान ज्योतिःस्वरूप अखंड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा है अर यह हाड मांस चामडामय महादुर्गंध विनाशीक देह है सो तुमारा रूपतें अत्यंत भिन्न है । कर्मके वशतें एक क्षेत्रमें अवगाहन करि एकसे होय तिष्ठै है तोहू तुमारे इनके अत्यंत भेद है अर यो देह पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणुनिका पिंड है सो अवसर पाय विखर जायगा । तुम अविनाशी अखंड ज्ञायकरूप होय इसके नाश होनेतें भय कैसे करो हो ॥ २ ॥ अब और हू कहै है—

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे ।
स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरस्थितिः ॥३॥

अर्थ—भो ज्ञानिन्! कहिये हो ज्ञानी तुमको वीतरागी सम्यग्ज्ञानी उपदेश करै हैं जो मृत्युरूप महान् उत्सवको प्राप्त होते काहेतैं भय करो हो? यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूपमैं तिष्ठता अन्य देहमें स्थितिरूप पुरकुं जाय है यामैं भयका हेतु कहा है? **भावार्थ**—जैसै कोऊ एक जीर्णकुटीमैंतै निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बड़ा उत्सवका अवसर है तैसैं यो आत्मा अपने स्वरूपमैं तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकूं छांड़ि नवीन देहरूप महलकौं प्राप्त होते महा उत्सवका अवसर है यामैं कुछ हानि नहीं जो भय करिये अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमैं तिष्ठते परका अपणामकरि रहित परलोक जावोगे तो बड़ा आदरसहित दिव्य धातु उपधातुरहित वैक्रियकदेहमैं देव होय अनेक महर्द्धिकनिमैं पूज्य महान देव होवोगे अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञान-स्वभावकूं बिगाड़ि परमैं ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियादिकका देहमैं अपने ज्ञानका नाश करि जड़रूप होय तिष्ठोगे, ऐसे मलीन क्लेशसहित देहकूं त्यागि क्लेशरहित उज्वल देहमैं जाना तो बड़ा उत्सवका कारण है ॥ ३ ॥

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद् दृश्यते पूर्वसत्तमैः ।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥४॥

अर्थ—पूर्वकालमैं भए गणधरादि सत्पुरुष ऐसै दिखावैं हैं जो जिस मृत्युतै भलेप्रकार दिया हुवाका फल पाइये अर

स्वर्गलोकका सुख भोगिये तातैं सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतैं होय। भावार्थ—अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइए है। जो आप छह कायके जीवनिकूं अभयदान दिया अर राग द्वेष काम क्रोधादिकका घातकरि असत्य अन्याय कुशील परधन हरणका त्यागकरि परमसंतोष धारणकरि अपने आत्माकूं अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक विना कहां भोगनेमें आवै सो स्वर्गलोकके सुख तो मृत्यु नाम मित्रके प्रसादतैं ही पाईए तातैं मृत्यु समान इस जीवका कोऊ उपकारक नाही। यहां मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमें कौन २ दुःख भोगता कितने काल रहता आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यंच नरकमें जाय पडता तातैं अब मरणका भय अर देह कुटुंब परग्रहका ममत्वकरि चिंतामणी कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकूं बिगाडि भयसहित सपतावान हुवा कुमरणकरि दुर्गति जावना उचित नाहीं ॥ ४ ॥ और हू विचारै है—

आगर्भाद्दुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपञ्जरे।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना ॥५॥

अर्थ—यो हमारो कर्म नाम वैरी मेरा आत्माकूं देहरूप पींजरेमैं क्षेप्या सो गर्भमैं आया तिस क्षणमैं सदाकाल क्षुधा तृष्णा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुःखनिकरि तप्तायमान हुवा पड्या हूं अब ऐसे अनेक दुःखनिकरि व्याप्त इस देहरूप पीजरातैं मोकूं

मृत्यु नाम राजा विना कौंन छुड़ावै। **भावार्थ**—इस देह रूप पींज-रेमैं कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इंद्रियनिके आधीन हुआ नाना त्रास सहूं हूं। नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है अर सासती स्वास उच्छ्वासकी पवनका खैंचना अर काढ़ना अर नाना प्रकारके रोगनिका भोगना अर उदर भरनै वास्तै नाना पराधीनता अर सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकरि महा क्लेशित होय रहना अर शीतोष्ण दुष्टनि करि ताड़न मारन कुवचन अपमान सहना कुटुंबके आधीन होना, धनकै राजाकै स्त्री पुत्रादिककै आधीन रहना ऐसा महान् बंदीगृह समान देहमैंतैं मरण नाम बलवान राजा विना कौन निकासै? इस देहकूं कहां तांई बाहता जाकूं नित्य उठावना बैठावना भोजन करावना जल पावना स्नान करावना निद्रा लिवावना, कामादिक विषयसाधन करावना, नाना प्रकारके वस्त्र आभरणादिकरि भूषित करना, रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हूं, आत्माकूं नाना त्रास देवै है भयभीत करै है आपा भुलावै है ऐसा कृतघ्न देहतैं निकसना मृत्यु नाम राजा विना नहीं होय जो ज्ञानसहित देहसों ममता छांड़ि सावधानीतै धर्मध्यानसहित वीतरागतापूर्वक जो समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करूं तो फेरि मेरा आत्मा देह धारण ही नहीं करै दुःखनिका पात्र नहीं होय। समाधिमरण नाम बड़ा न्यायमार्गी राजा है मोकूं याहीका शरण होहू मेरे अपमृत्युका नाश होहू ॥ ९ ॥ और हू कहै हैं—

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः ।
मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी हैं ते मृत्यु नाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिंडकूं दूर छांडकरि सुखकी संपदाकूं प्राप्त होय हैं। **भावार्थ**—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छांडि दिव्य वैक्रियक देहमैं प्राप्त होय नाना सुख संपदाकूं प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिकै समाधिमरणका है। समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नहीं है इस देहमैं नाना दुःख भोगना अर महान रोगादि दुःख भोगि करि मरना फिर तिर्यंच देहमैं तथा नरकमैं असंख्यात अनंतकालतांई असंख्यात दुःख भोगना अर जन्ममरणरूप अनंत परिवर्तन करना तहां कोऊ शरण नाहीं। इस संसार परिभ्रमणसों रक्षा करनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं है कदाचित् अशुभकर्मका मंद उदयतै मनुष्यगति उच्च कुल इंद्रियपूर्णता सतपुरुषनिका सगम भगवान् जिनेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है। अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग ज्ञानस्वभावरूप आत्माका अनुभवकरि भयरहित च्यार आराधनाका शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमै तीन कालमैं इस जीवका हित है नाहीं। जो संसार परिभ्रमणतै छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है ॥ ६ ॥

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः ।
निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

अर्थ—जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होते हू अपना कल्याण नहीं सिद्ध किया सो जीव संसाररूप कर्दममें डूबा हुवा पाछे कहा करसी ? **भावार्थ**—इस मनुष्य जन्ममें मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है जो वाञ्छित लेना है सो लेहु जो ज्ञानसहित अपना निजस्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपणा तथा इंद्रपणा अहमिंद्रपणा पाय पाछे तीर्थंकर तथा चक्री णा होय निर्वाण पावो । मरणसमान त्रैलोक्यमें दाता नहीं ऐसे दाताकूं पायकरि भी जो विषयकी वांछा कषाय सहित हो रहोगे तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है । मरण नाम कल्पवृक्षकूं बिगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षयनिधानरहित भए संसाररूप कर्दममें डूब जावोगे अर भो भव्य हो जो थे वांछाका मारया हुवा खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो अतिलोभी भए विषयनिके भोगनेकूं धन वास्तै हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रहमें आसक्त भये निंद्यकर्म करो हो अर वांछा पूर्ण हू नहीं होय अर दुःखके मारे मरण करो हो कुटंबादिकनिकूं छांडि विदेशमैं परिभ्रमण करो हो निंद्य आचरण करो हो अर निंद्यकर्म करिकै हू अवश्य मरण करो हो अर जो एकवार हू समता धारण करि त्यागब्रा-

सहित मरण करो तो फेरि संसारपरिभ्रमणका अभावकरि अविनाशी सुखकूं प्राप्त हो जावो तातै ज्ञानसहित पंडितमरण करना ही उचित है ॥ ७ ॥

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः ।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा ॥८॥

अर्थ—जिस मृत्युतै जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिकै साताका उदयकी ज्यों हर्षकै अर्थि नहीं होय कहा? ज्ञानीनिकै तो मृत्यु हर्षकै अर्थि ही है। **भावार्थ**—यो मनुष्यनिको शरीर नित्य ही समय समय जीर्ण होय है देवनिका देह ज्यों जरारहित नहीं है दिन दिन बल घटै है कांति अरु मलीन होय है स्पर्श कठोर होय है समस्त नसनिके हाडनिके बंधान शिथिल होय है चाम ढीली होय मासादिकनिकूं छाडि उरलीरूप होय है नेत्रनिकी उज्ज्वलता विगडै है कर्णनिमें श्रवण करनेकी शक्ति घटै है हस्तपादादिकनिमें असमर्थता दिन दिन बधै है गमनशक्ति मंद होय है चालते बैठते उठते स्वास बधै है कफकी अधिकता होय है रोग अनेक बधै है ऐसी जीर्ण देहका दुःख कहां तक भोगता अर ऐसे देहका धीरणा कहा तक होता? मरण नाम दातार विना ऐसे निंद्यदेहकूं छुडाय नवीन देहमें वास कौन करावै? जीर्ण देह है तिसमें बडा असाताका उदय भोगिये है सो मरण

नाम उपकारी दाता विना ऐसी असाताकूं दूर कौन करै अर जे सम्यग्ज्ञानी हैं तिनकै तो मृत्यु होनेका बड़ा हर्ष है जो अब संयम व्रत त्याग शीलमैं सावधान होय ऐसा यत्न करै जो फेरि ऐसे दुःखका भरया देहको धारण नहीं होय ? सम्यग्ज्ञानी तो याहीकुं महा साताका उदय मानै है ॥ ८ ॥

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत् ।
मृत्युभीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥ ९ ॥

अर्थ—यो आत्मा देहमैं तिष्ठतो हू सुखकूं तथा दुःखकूं सदा काल जानै ही है अर परलोकप्रति हू स्वयं गमन करै है तो परमार्थतैं मृत्युका भय कौनकै होय । **भावार्थ**—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमैं तिष्ठता हू मैं सुखी मैं मरूं हूं मैं क्षुधावान मैं तृषावान मेरा नाश हुआ ऐसा मानै । अर अंतरात्मा सम्यग्दृष्टी ऐसै मानै है जो उपज्या है सो मरैगा पृथ्वीजलअग्नि-पवनमय पुद्गलपरमाणुनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो॥ मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा मेरा नाश कदाचित नहीं होय । ये क्षुधातृषावातपित्तकफादिरोगमय वेदना पुद्गलकै हैं मैं इनका ज्ञाता हूं मैं यामैं अहंकार वृथा करूं हूं । इस शरीरकै अर मेरे एक क्षेत्रमैं तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है अर शरीर जड़ है, मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मैं अखंड एक हूं, शरीर अनेक परमाणु-

निका पिंड है, मै अविनाशी हूं, देह विनाशीक है अर इस देहमें जो रोग तथा तृषादि उपजे तिसका ज्ञाता ही रहना मेरा तो ज्ञायक स्वभाव है परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है अर जैसें एक मकानकूं छांड़ि अन्य मकानमै प्रवेश करै तैसे मेरे शुभ अशुभ भावनकरि उपजाया कर्मकरि रच्या अन्य देहमैं मेरा जाना है इसमें मेरा स्वरूपका नाश नही अर निश्चयकरि विचारतै मरणका भय कौनकै होय ॥ ९ ॥

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणां ।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनां ॥१०॥

अर्थ—संसारमें जिनका चित्त आसक्त है अपना रूपकूं जे जानै नहीं तिनके मृत्यु होना भयके अर्थि है अर जे निजस्वरूपके ज्ञाता हैं अर संसारतै विरागी हैं तिनके तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है। **भावार्थ**—मिथ्यादर्शनके उदयतै जे आत्मज्ञानकरि रहित देहहीकूं आपा माननेवाले अर खावना पीवना कामभोगादिक इन्द्रियनिकै विषयनिकू ही सुख माननेवाले बहिरात्मा हैं तिनके तो अपना मरण होना बड़ा भयके अर्थि है जो हाय! मेरा नाश भया फेरि खावना पीवना कहा हूं नहीं है नहीं जानिये मरे पीछे कहा होयगा कैसे मरूगा अब यह देखना मिलना कुटम्बका समागम सब मेरे गया, अब कौनका शरण ग्रहण करूं कैसे जीऊं ऐसे महा संक्लेश

करि मरै हैं अर जे आत्मज्ञानी हैं तिनकै मृत्यु आये ऐसा विचार उपजै है जो मैं देहरूप बंदीगृहमैं पराधीन पड्या हुवा इन्द्रियनिके विषयनि की चाहनाकी दाह करि अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगनिकरि उपजी महा वेदना तिनकरि एक क्षण हू थिरता नही पाई, महान दुःख पराधीनता अपमान घोर वेदना अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भोगता महा ... काल व्यतीत किया अब ऐसे क्लेश छुडाय पराधीनतारहित मेरा अनंतसुखस्वरूप जन्ममरणरहित अविनाशी स्थानकु प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है यो मरण महासुखको देनेवाला अत्यत उपकारक है अर यो संसारवास केवल दु.खरूप है यामैं एक समाधिमरण ही शरण है और कहू ठिकाना नहीं है इस विना च्यारों गतिनिमैं महा त्रास भोगी है अब संसारवासतै अति विरक्त मैं समाधिमरणका शरण ग्रहण करूं ॥ १० ॥

पुराधीशो यदा याति सुकृतस्य बुभुत्सया ।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्चभौतिकैः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस कालमैं यो आत्मा अपना कियाका भोगनेकी इच्छाकरि परलोककुं जाय है तदि पंचभूत संबंधी देहादिक प्रपंचनिकरि याकूं कौन रोकै ? भावार्थ—इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण हो जाय अर जो अन्य परलोकसंबंधी आयुकावादिक उदय आ

जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पंचभूत कोऊ रोकनेकूं समर्थ नहीं हैं ताते बहुत उत्साहितै च र आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्व्याधिसम्भवं ।
देहमोहविनाशाय मन्ये शिवसुखाय च ॥१२॥

अर्थ—मृत्युका अवसरविषै जो पूर्वकर्मका उदयतै विनाशीक दीखै है अर देहका कृतघ्नपणा प्रगट दीखै है तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है वीतरागता प्रगट होय है तदि ऐसा विचार उपजै है जो इस देहकी ममताकरि मैं अनन्तकाल जन्ममरण नाना वियोग रोग संतापादिक नरकादिक गतिनिमैं दुःख भोग अब भी ऐसे दुखदाई देहमै ही फेरि हू ममत्वकरि आपाकूं भूलि एकेंद्रियादि अनेक कुयोनिमै भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करूं हूं जो अब इस शरीरमै ज्वर कास श्वास शूल वात पित्त अतीसार मंदाग्नि इत्यादिक रोग उपजै हैं सो इस देहमैं ममत्व घटावनेके अर्थि बड़ा उपकार करैं हैं धर्ममै सावधानता करावै हैं। जो रोगादिक नहीं उपजता तो मेरी ममता हू देहतै नहीं घटती अर मद हू नहीं घटता, मैं तो मोहकी अंधेरीकरि आंधा हुवा आत्माकूं अजर अमर मान रह्या था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया अब इस देहकूं अशरण जानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपहीकूं एक

निश्चय शरण जानि आराधनाका धारक भगवान परमेष्ठीकूं चित्तमैं धारण करूं हूं। अब इस अवसरमैं हमारैं एक जिनेंद्रका वचनरूप अमृत ही परम औषधि होहू, जिनेंद्रका वचनामृत विना विषयकषाय-रूप रोगजनित दाहके मेटनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं। बाह्य औषधादिक तो असाता कर्मके मंद होते किंचित् काल कोऊ एक रोगकूं उपशम करै अर यो देह अनेक रोगनिकरि भऱ्या हुवा है अर कदाचित् एक रोग मिट्या तो हू अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही पड़ैगा तातैं जन्मजरामरणरूप रोगकूं हरनेवाला भगवानका उपदेशरूप अमृतहीका पान करूं अर औषधादि हजारां उपाय करते हू विनाशीक देहमैं रोग नहीं मिटैगा तातैं रोगतैं आर्ति उपजाय कुगतिका कारण दुर्ध्यान करना उचित नहीं। रोग आवते हू बड़ा हर्ष ही मानो जो रोगहीके प्रभावतैं ऐसा जीर्ण गल्या हुवा देहतैं मेरा छूटना होयगा रोग नहीं आवै तो पूर्वकृत कर्म नहीं निर्जरै अर देहरूप महा दुर्गंध दुःखदाई बंदीगृहतैं मेरा शीघ्र छूटना हू नहीं होय अर यो रोगरूप मित्रको सहाय ज्यों ज्यों देहमें वधै है त्यों त्यों मेरा रागबंधनतैं अर कर्मबंधनतैं अर शरीरबंधनतैं छूटना शीघ्र होय है अर यो रोग तो देहमैं है इस देहकूं नष्ट करैगा मैं तो अमूर्तिक चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं ज्ञाता हूं अर जो यो रोगज-नित दुःख मेरे जाननेमैं आवे है सो मैं तो जाननेवाला

ही हू याकी नर मेरा नाश नहीं है जैसे लोहकी संगतितै अग्नि हू घणनिका घात सहै है तैसे शरीरकी संगतितें वेदनाका जानना मेरे हू है अग्नितै झूपड़ी बलै है झूंपडीके माहिं आकाश नहीं बलै है तैसे अविनाशी अमूर्तिक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नहीं है अर अपना उपजाया कर्म आपकू भोगना ही पड़ैगा कायर होय भोगूगा तो कर्म नहीं छाडैगा अर धैर्य धारणकरि भोगूगा तो कर्म नहीं छाड़ैगा तातै दोऊ लोकका बिगाडनेवाला कायरपनाकूं धिक्कार होहू कर्मका नाश करनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है। अर हे आत्मन्! तुम रोग आए एते कायर होते हो सो विचार करो नरकनिमें यो जीव कौन कौन त्रास भोगी असंख्यात बार अनंतवार मारे विदारे चीरे फाड़े गये हो इहां तो तुमारे कहा दुःख है अर तिर्यंच गतिके घोर दुःख भगवान ज्ञानी हू वचनद्वारकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं अर मैं तिर्यंच पर्यायमें पूर्व अनतबार अग्निमें बलि बलि मरया हूं अर अनंत बार जलमें डूबि डूबि मरया हूं अनत बार सिंह व्याघ्र सर्पादिकनिकरि विदारया गया हूँ शस्त्रनिकरि छेद्या गया हूं, अनंत बार शीतवेदनाकरि मरया हूँ अनतबार उष्णवेदनाकरि मरया हूँ अनंत बार क्षुधाकी वेदनाकरि मरया हूँ अब यह रोगजनित वेदना केतीक है? रोग ही मेरा उपकार करै है। रोग नहीं उपजता तो देहतै मेरा स्नेह नहीं घटता अर सम-

स्तैं छूटे परमात्माका शरण नहीं ग्रहण करता तातें इस अवसरमैं जो रोग है सोहू मेरा आराधनामारगमैं प्रेरणा करनेवाला मित्र है ऐसे विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नहीं करै है, मोहके नाश करनेका उत्सव ही मानै है ॥ १२ ॥

ज्ञानिनोऽमृतसङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्‌ ।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन्‌ भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

अर्थ—यद्यपि इस लोकमैं मृत्यु है सो जगतके आतापका करनेवाला है तो हु सम्यग्ज्ञानीकै अमृतसंग जो निर्वाण ताके अर्थि है। जैसे काचा घड़ कूं अग्निमैं पकावना है सो अमृतरूप जलके धारणके अर्थि है जो काचा घड़ा अग्निमै नहीं पकै तो घड़ामैं जल धारण नाहीं होय है अग्निमैं एक वार पकि जाय तो बहुत काल जलका संसर्गकूं प्राप्त होय तैसे मृत्युका अवसरमैं आताप समभावनि-करि एक वार सहि जाय तो निर्वाणका पात्र हो जाय। भावार्थ—अज्ञानीकै मृत्युका नामतैं भी परिणाममैं आताप उपजै है जो मैं अब चाल्या अब कैसे जीऊं कहा करूं कौन रक्षा करै ऐसे संतापकों प्राप्त होय है क्योंकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है देहादिक बाह्य वस्तुकूं ही आत्मा मानै है अर ज्ञानी जो सम्यग्दृष्टी है सो ऐसा मानै है जो आयु कर्मादिकका निमित्ततै देहका धारण है सो अपनी स्थिति

पूर्ण भये अवश्य विनशैगा मैं आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वभाव हू जीर्ण देह छाडि नवीनमैं प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाही है ॥१३॥

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडंबनात् ।
यत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥१४॥

अर्थ—यहां सत्पुरुष हैं ते व्रतनिका बडा खेदकरि जिस फलकूं प्राप्त होइये है सो फल मृत्युका अवसरमें थोरे काल शुभ-ध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखतें साधने योग्य होय है। भावार्थ—जो स्वर्गमें इन्द्रादिक पद वा परम्पराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिक घोर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमैं जो देह कुटुम्बादिसूं ममता छांडि भयरहित हुवा वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि कायरता छाडि आपना ज्ञायक स्वभावकूं अवलंबनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध हो तथा स्वर्गलोकमें महर्द्धिक देव होय तहातैं आय बडा कुलमैं उपजि उत्तम संहननादि सामग्री पाय दीक्षा धारण करि अपने रत्नत्रयकी पूर्णताकूं प्राप्त होय निर्वाण जाय है ॥ १५ ॥

अनार्तः शांतिमान्मर्त्यो न तिर्यग् नापि नारकः ॥
धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्यमरेश्वरः ॥ १५ ॥

अर्थ,—जाकै मरणका अवसरमैं आर्त्त जो दुःखरूप परिणाम नहीं होय अर शांतिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप चित्त हो सो पुरुष तियच नहीं होय नारकी नहीं होय अर जो

धर्मध्यानसहित अनशनव्रत धारण करके मरै सो तो स्वर्गलोकमें इन्द्र होय तथा महर्द्धिक देव होय अन्य पर्याय नहीं पावै ऐसा नियम है। **भावार्थ**—यो उत्तम मरणको अवसर पाय करिकैं आराधना सहित मरणमैं यत्न करो अर मरण आवते भयभीत होय परिग्रहमें ममत्व धारि आर्त्त परिणामनिमों मरणकरि कुगतिमैं मत जावो। यो अवसर अनंतभवनिमैं नहीं मिलैगा अर मरण छांड़ेगा तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारणकरि देहका त्याग करो ॥ १५ ॥

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥१६॥

अर्थ,—तपका संताप भोगनेका अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढ़नेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना है। **भावार्थ,**—हे आत्मन्! जो तुम इतने काल इन्द्रियनिके विषयनिमैं वांछारहित होय अनशनादि तप किया है सो अनंतकालमैं आहारादिकनिका त्यागसहित संयमसहित देहकी ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया है अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमैं ममताका त्याग करि समस्त मनवचनकायतैं आरम्भादिक त्यागकरि समस्त शत्रु मित्रनिमैं वैर राग छांड़करि उपसर्गमैं धीरता धारणकरि अपना एक ज्ञायकस्वभावको अवलंबनकरि समाधिमरण करनेके अर्थि किये हैं

अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितैं भिन्न आपकूं जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनकरि काल व्यतीत किया है अर मरणका अवसरमैं हू ममता भय राग द्वेष कायरता दीनता नहीं छांडोगे तो इतने काल तप कीने व्रत पाले श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होयगे तातै इस मरणके अवसरमैं कदाचित् सावधानी मत विगाड़ो ॥ १६ ॥

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥१७॥

अर्थ—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय अतिसेवन हो जाय तिसमैं अवज्ञा अनादर होजाय है रुचि घटि जाय है अर नवीनका सगममैं प्रीति होय है यह बात प्रसिद्ध है अर हे जीव ! तू इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया अब याका नाश होतै अर नवीन शरीरका लाभ होतै भय कैसे करो हो भय करना उचित नहीं । **भावार्थ**—जिस शरीरकुं बहुत काल भोगि जीर्ण कर दीना साररहित बलरहित हो गया अर नवीन उज्ज्वल देह धारण करनेका अवसर आया अब भय कैसे करो हो? जीर्ण देह तो विनसहीगो इसमैं ममता धारि मरण बिगाड़ि दुर्गतिका कारण कर्मबंध मत करो ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडितम् ।

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्त्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनं।
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेशविसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः॥१८

अर्थ—ऐसे जो भय रहित होय समाधिमरणमैं उत्साहसहित च्यार आराधनानिकूं आराधि मरण करै है ताकै स्वर्गलोग विना अन्य गति नहीं होय है स्वर्गनिमें महर्धिक देव ही होय है ऐसा निश्चय है बहुरि स्वर्गमे आयुका अंतपर्यन्त महासुख भोगि करिकै इस मनुष्यलोकविषै पुण्यरूप निर्मल कुलमैं अनेक लोयनि करि चिंतवन करते करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुंब परिवार मित्रादि जन-निकूं नाना प्रकारके वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्यकरि उपजे भोगनकूं निरंतर भोगि आयु प्रमाण थोडे काल पृथ्वीमंडलमैं संयमादि सहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करके जैसे नृत्यके अखाडेमें नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिकै आनंद उपजाय निकल जाय है तैसे वह सत्पुरुष सकल लोकनिकै आनंद उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकू प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

दोहा ।

मृत्यु महोत्सव वचनिका, लिखी सदासुखकाम ।
शुभ आराधन मरण करि, पावै निज सुख धाम ॥१॥
उगणीसै ठारै शुकल, पचमि मास अषाढ ।
पूरण लिखि बांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ ॥२॥